किनारा

राधाकिशन सोनी

चित्रांकन

सुरेश लाल

यह पुस्तक बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति एवं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला में तैयार की गई।

ISBN 978-81-237-8805-0

पहला संस्करण : 2019 *(शक 1941)*

Kinara *(Hindi Original)*

₹ 20.00

निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 द्वारा प्रकाशित
Website: www.nbtindia.gov.in
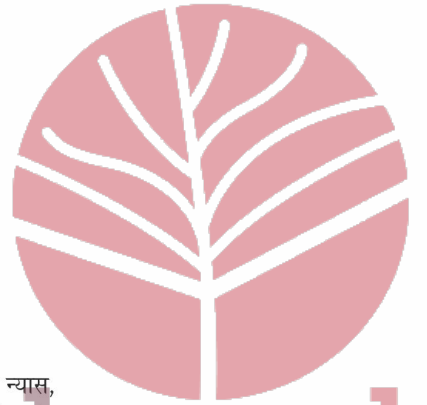
नवसाक्षर साहित्यमाला

किनारा

राधाकिशन सोनी

चित्रांकन

सुरेश लाल

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

खट... खट... खट!

"कौन?"

"चाचा! मैं, छगनी।"

"आओ बेटा! बहुत दिनों बाद आई।"

"हाँ, चाचा। नाना से मिलने गई थी।"

"देखो बेटा! एक तुम और एक हमारे टुन्नू-मुन्नू।"

"क्या हुआ? टुन्नू-मुन्नू को चाचा?"

"नहीं। कुछ नहीं। तुम इतनी दूर से आई हो। वे घर में रहते हैं, किंतु नहीं मिलते महीनों तक।"

"कहाँ हैं टुन्नू-मुन्नू?"

"अंदर, टी.वी. देख रहे होंगे।"

"हाँ, चाचा! अब बताओ तबीयत कैसी है?"

"क्या बताऊँ बेटा!"

"आँखों से कम दिखता है। कानों से कम सुनाई देता है।"

“चाचा! कोई देशी इलाज किया?”

“कहाँ? बेटा। कैसे करता? अब तुम्हारी चाची तो है नहीं। बेचारी कितना ख्याल रखती थी।

उसके जाने के बाद सोचा—श्यामू सहारा बनेगा। किंतु उसने भी मुँह फेर लिया। बेटा सबने किनारा कर लिया है।” खेमचंद बोले।

“चाचा! कल दीदी ने स्कूल में बताया था—हरड़ बहुत उपयोगी है। भोजन के बाद चूसना चाहिए। पेट का रोग दूर होता है। भोजन पचता है। नज़र तेज होती है। अखरोट भी गुणकारी है। घुटनों का दर्द कम होता है।”

“चाचा! मैं यह सामान कल ला दूँ!”

“नहीं बेटा।”

“अब चलूँ? गिरधर चाचा से मिलने जाना है।”

“अच्छा बेटा। तुमसे मिलने पर सुकून मिलता है।” (छगनी गिरधर से मिलने जाती है।)

“लो, आ गई चहेती बेटी!”

(उसे देखकर गोपी की बहू बड़बड़ाई)

“कैसी हो भाभी?”
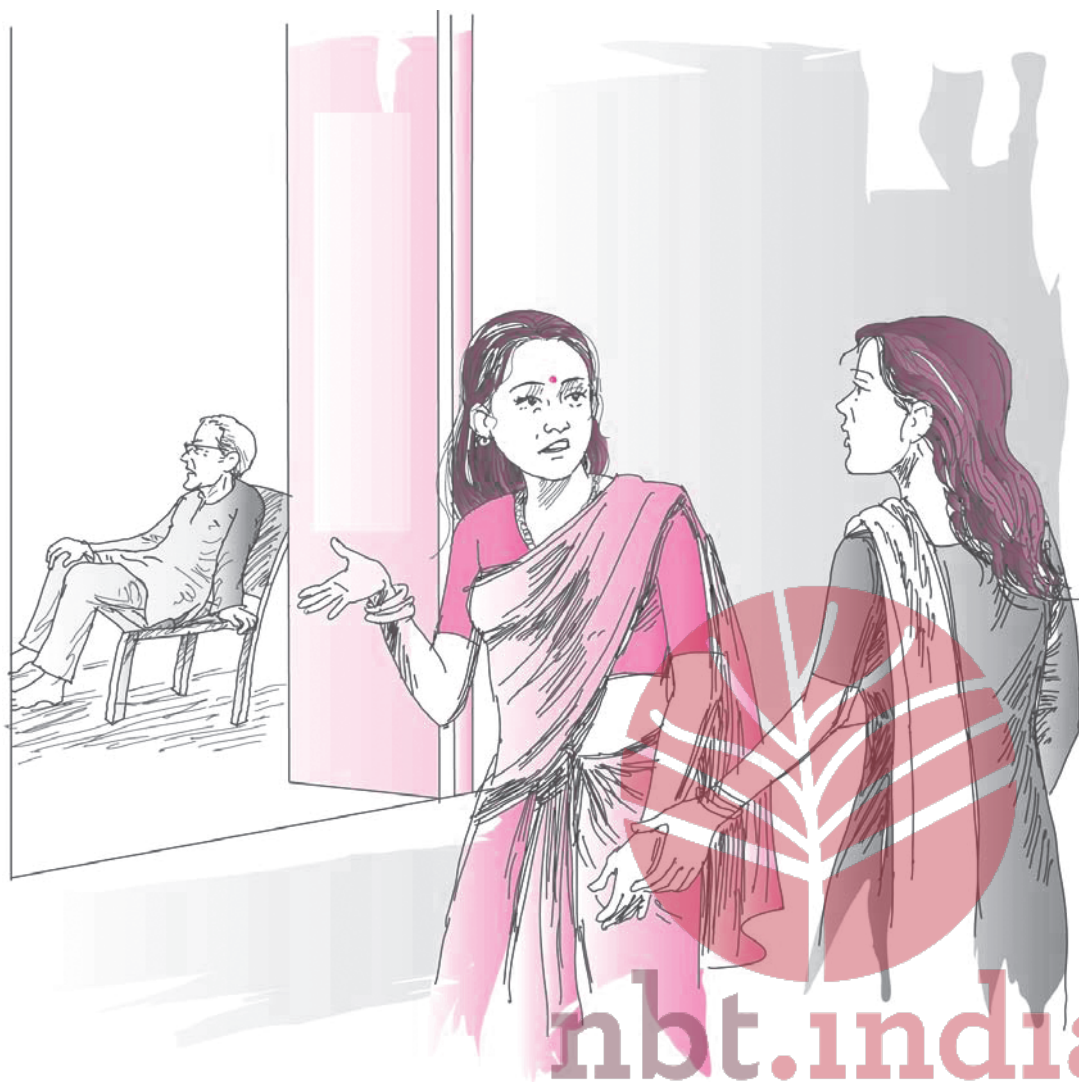
“अरे, क्या बताऊँ? कल ही चद्दर बिछाई थी। आज चाय गिरा दी।”

“किसने? भाभी।”

“तुम्हारे चाचा ने। और किसने?”

“चाचा के हाथों में ताकत नहीं है भाभी। कप छूट गया होगा। गुस्सा क्यों होती हो। लाओ मैं धो देती हूँ।”

“तुम कब—कब धोओगी। धोना तो मुझे ही पड़ेगा। पता नहीं कब पीछा छूटेगा। दिनभर खोपड़ी खाता रहता है।”

“नहीं, भाभी। चाचा के बारे में ऐसा मत बोलो। चाचा तो अपने हैं। देखो! भैया को पढ़ाया, डॉक्टर बनाया। यह सब माया उन्हीं की है।”

“ठीक है। ठीक है। जाओ मिल लो अपने चाचा से।”

(छगनी गिरधर के कमरे में जाती है, प्रणाम करती है।)

“कैसे हो चाचा?”

“बेटा! अंतिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ।”

“ऐसी क्या बात है? चाचा।”

“क्या बताऊँ बिटिया? अब तो जाने में ही फायदा है। सबकी आँखों में गड़ने लगा हूँ।”

“नहीं चाचा। गोपी भैया आपको बहुत चाहते हैं।”

“अरे बेटा! मेरे तो सारे सपने ही बिखर गए। लगता है, वर्षों बीत गए उससे मिले। बेटा! किसे

दोष दूँ? अब सोचता हूँ। मैं भी माँ-बाऊजी से कब मिला? कलेक्टर जो था। फुर्सत ही नहीं मिलती थी। सब करनी का फल है बेटा।

और बताओ छगनी। मेरा भाई लाधू कैसा है?"

"पापा ठीक हैं चाचा। रोज सुबह घूमने जाते हैं। घर आकर व्यायाम करते हैं। थोड़ी देर बाद मट्ठा पीते हैं। फिर भानू को पढ़ाते हैं। दोपहर में टी.वी. देखते हैं। पहले छोटा टी.वी. था। परसों दीनू भैया पापा के लिए बड़ा टी.वी. ले आए। पिक्चर बड़ी और स्पष्ट दिखाई देती है।"

"अरे बेटा! दीनू तो कुल का दीपक है। वह अपने पिता का कितना ख्याल रखता है।"

"हाँ चाचा भैया कहते हैं, पापा ने कितने दुख सहकर हमें पढ़ाया।"

"हाँ, बेटा। लाधू तो बड़ा मेहनती है। मुझसे मिलने के लिए कहना। मुझे उससे माफी माँगनी है बेटा!"

"कैसी माफी? चाचा।"

"अरे बेटा! तुम्हें नहीं मालूम। एक बार दीनू की परीक्षा-फीस चुकानी थी।

तुम्हारे पापा के पास पैसे नहीं थे। होते भी कहाँ से? मास्टरी में तनख्वाह ही कितनी थी? ट्यूशन

तुम्हारे पापा करते नहीं थे। जो कुछ मिलता, परिवार में ही लग जाता। परिवार भी तो बड़ा था न। उसने मुझसे कुछ रुपए उधार माँगे। मैंने मना कर दिया। तब से वह मुझसे नाराज है।”

“नहीं चाचा, पापा तो किसी से नाराज होते ही नहीं। वे तो सबसे मिलते हैं। चाचा! पापा ने आजकल एक वरिष्ठ नागरिक समिति बना रखी है। रोज शाम को एक घंटे लोगों से मिलते हैं।

हर रविवार को वृद्धाश्रम में जाते हैं। वहाँ की समस्याएँ सुनते हैं। कल ही भैया ने आश्रम को एक लाख रुपए दिए हैं। गर्मी आ रही है। आश्रम में ए.सी. लगवाएँगे।”

“अच्छा है बेटा। मैं तो इस काल कोठरी में पड़ा हूँ। कौन क्या करता है? कहाँ क्या हो रहा है? मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम। यहाँ तो सुध लेने वाला ही कोई नहीं।”

“चाचा! अब मैं घर चलती हूँ।”

“हाँ बेटा। लाधू को कहना। मुझ से मिले।”

(छगनी घर आती है)

“छग्गो! कहाँ गई थी?”

“गिरधर चाचा के यहाँ, पापा!”
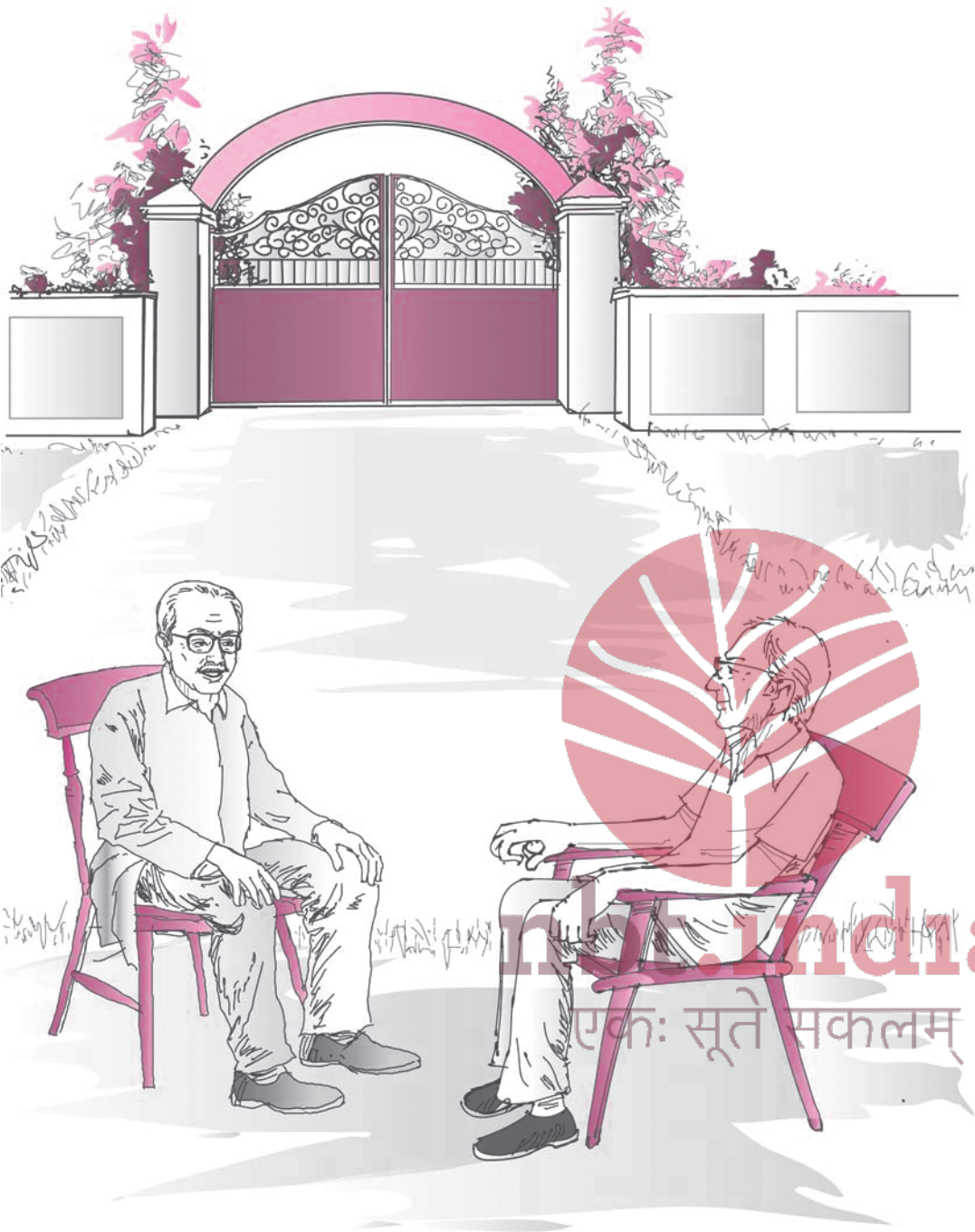
वे बहुत बीमार और दुखी हैं। रो-रो कर दिन काट रहे हैं। आपको मिलने के लिए कहा है।

पापा! आज जरूर मिलने जाना। कह रहे थे आप मिलते ही नहीं।''

(लाधूरामजी गिरधरजी से मिलने के लिए जाते हैं)

उन्हें देखकर गिरधरजी कहते हैं, ''आओ प्रिंसिपल साहब। चलो, भाई की याद तो आई!''

''कैसे हैं आप? कलेक्टर साहब।''

''अरे भाई, मैं अब कलेक्टर नहीं हूँ।''

''तो मैं भी प्रिंसिपल नहीं हूँ।''

''भाई अब भी नाराज हो क्या?''

''नहीं भाई साहब। कैसी नाराजगी? छोड़िए इन फालतू बातों को। बताइए, आप कैसे हैं?''

''दिनभर हाथ—पाँव पटकता रहता हूँ। सोचता हूँ कोई मिलेगा... कोई मिले...।''

बोलते-बोलते गिरधरजी का गला रुँध जाता है। आँखें भर आती हैं।

''भाई किसी से बात करता हूँ तो आँखें नीची हो जाती हैं।''

''नहीं। गिरधरजी ऐसा मत सोचो। मैं समझाऊँगा गोपी को। गोपी अच्छा लड़का है। सब ठीक हो जाएगा।''

उसी समय गोपी आता है।

"अरे गोपी बेटा! कैसे हो?"

"अच्छा हूँ अंकल। "

"पापा से मिलने आए हो?"

"हाँ, गोपी बेटा! कल छग्गो आई थी उसने बताया गिरधरजी की तबीयत ठीक नहीं है।"

"अंकल। पापा का क्या? वे तो यूँ ही रहते हैं। बुढ़ापे का असर तो आएगा ही।" गोपी ने बड़ी बेरुखी से कहा।

"अरे गोपी बेटा! रविवार को वृद्धाश्रम सम्मेलन है गाँधी पार्क में। सायं तीन बजे। तुम्हें आना है गिरधरजी को साथ लेकर।" "पापा क्या करेंगे? वैसे भी उनसे बैठा तो जाता नहीं है।"

"नहीं गोपी। तुम उन्हें साथ में लेकर जरूर आना। ठीक है। मैं अब चलता हूँ। गिरधरजी नमस्कार। आप गोपी के साथ जरूर आना।"

गिरधर चुप रहते हैं। मन में सोचते हैं—कैसे जाऊँगा? गोपी तो साथ जाएगा नहीं। फिर भी हाँ कर देते हैं। रात्रि में लाधूरामजी के घर बैठक हुई। सम्मेलन में वृद्धाश्रम के विकास की रूपरेखा बनाई गई। वृद्धाश्रम को सम्मानित करने का निर्णय लिया गया।

रविवार का दिन। गाँधी पार्क में मंच सजा है। दरियाँ बिछी हैं। कुर्सियाँ लगी हैं। लोग आ रहे हैं। अपनी सुविधा से दरी या कुर्सी पर बैठ रहे हैं।

घनश्यामजी...गोपालजी...चुन्नीलालजी...सब आ गए। किंतु गिरधरजी? कहाँ हैं? अभी आए नहीं।

लाधूराम दीनू को बुलाते हैं।

"अरे दीनू। सब दिखाई दे रहे हैं पर गिरधरजी भाई साहब नहीं आए।"

"हाँ, अभी तक तो नहीं आए।"

"तुम गाड़ी लेकर जाओ गिरधरजी को लेकर आओ।"

दीनू गिरधरजी को लाता है। छगनी एवं दीनू सहारा देकर उन्हें कुर्सी पर बिठाते हैं।

कार्यक्रम शुरू होता है। सरस्वती वंदना होती है। स्वागत गान... कुछ फिल्मी गीतों की प्रस्तुति... कुछ देश भक्ति गीतों की प्रस्तुति। लाधूरामजी वृद्धाश्रम की रिपोर्ट पढ़ते हैं। ग्यारह वृद्धजन सम्मानित होते हैं। गिरधरजी को भी सम्मानित किया जाता है। सब बहुत खुश होते हैं। गिरधरजी, गोपालजी भी बहुत खुश होते हैं।
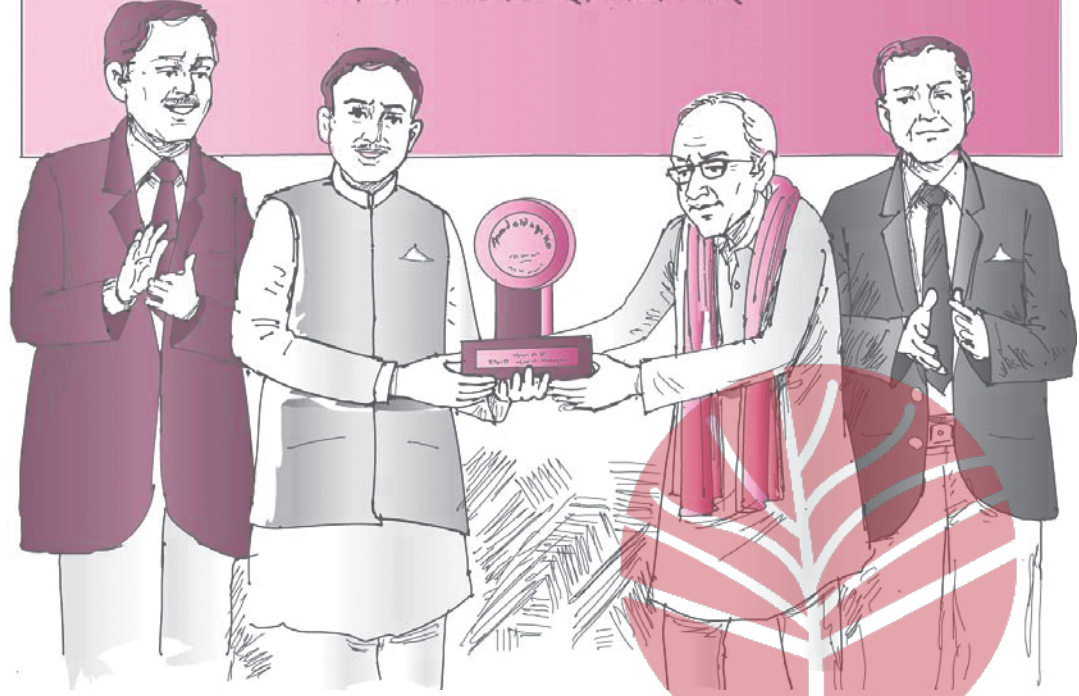
आज कितने दिनों बाद घर से बाहर कदम रखा। अपनो से मिले। आश्रम के कार्यकर्ता सभी को आदर सहित घर छोड़कर आए।

गिरधरजी घर पहुँचते हैं। माथे पर तिलक। सिर पर साफा। कंधे पर शॉल। जिस व्यक्ति के हाथ काँपते थे। जिन हाथों से कुछ नहीं संभलता था। आज उन्हीं हाथों में सामान। एक में प्रतीक चिन्ह।

दूसरे में प्रशस्ति—पत्र। सम्मान में इतनी शक्ति होती है।

यह सब देखकर पोता राघव पूछता है, “दादा यह क्या है? किसने दिए आपको ये सब?”

“बेटा! मुझे आश्रम वालों ने सम्मानित किया है।”

“दादा! यह सम्मानित करना क्या होता है?”

“बेटा, इज़्ज़त देना।”

शाम को गोपी घर आता है। राघव ने उन्हें दादा की बातें बताईं।

“अरे भाग्यवान! कहाँ हो?”

“जी! यहाँ हूँ। चिल्ला क्यों रहे हो? क्या बात है?”

“सुना तुमने? राघव कह रहा है, आज आश्रम वालों ने पापा को सम्मानित किया।”

“हाँ सुना। फिर क्या हुआ? हाथों में सत नहीं है। अब कहाँ से आ गई अचानक इतनी शक्ति? दोनों हाथों में सामान। कैसे पकड़ा? दिनभर सेवा करते हैं। फिर भी लोगों के सामने इज़्ज़त का बँटाधार। बाहर जाकर और बताते हैं।”

गोपी बाहर चला जाता है। प्रियंका चुप हो जाती है।

गिरधरजी परेशान हो जाते हैं। दुखी तो थे ही। आखिर घर छोड़ने का निर्णय लेते हैं। और एक दिन वृद्धाश्रम चले जाते हैं।

वृद्धाश्रम में रतनलालजी गिरधरजी से मिलते हैं। गिरधरजी अपने समधी से हालचाल पूछते हैं। रतनलालजी कहते हैं, ‘‘घर स्वार्थ का अखाड़ा बन गया है। घरवालों ने सेवा नहीं की। मैं यहाँ चला आया। कोई बात नहीं। सब समय का फेर है। दोनों यहाँ साथ रहेंगे।’’ रतनलालजी आश्रम में पंजीयन कराते हैं। गिरधरजी के पास ही पलंग मिलता है।

सुबह मॉर्निंग वॉक। फिर व्यायाम। हल्का नाश्ता। दोपहर में भोजन। सायं को फल-फ्रूट। रात्रि में कच्चा भोजन। कभी खिचड़ी। कभी दलिया। फिर दूध। दोपहर में टी.वी. देखना। बैठे-बैठे चौपड़ खेलना। नियमित डॉक्टरी चेकअप। रात्रि में सत्संग। कई महीनों बाद महेश पिता से मिलने आया। घर चलने के लिए कहा।

रतनलालजी ने मना कर दिया। मैं यहाँ ठीक हूँ। मैं तुम लोगों पर भार था, नहीं...नहीं...मैं नहीं जाऊँगा।

महेश बार-बार कहने लगा। जब रतनलालजी ने कहा,

“हाँ, एक शर्त पर। मैं पेंशन की आधी रकम वृद्धाश्रम को दूँगा। आधी अपने पास रखूँगा। और पहले गिरधरजी घर जाएँगे। फिर मैं।”

महेश गोपी को फोन लगाता है।

“हैलो। कौन? (गोपी की पत्नी प्रियंका फोन उठाती है।) दीदी, मैं महेश।”

“हाँ, महेश। बोलो।”

“दीदी, पापा को लेने आश्रम आया हूँ।”

“मेरी पापा से बात कराओ।” (महेश मोबाइल रतनलालजी को देता है)

“पापा! घर चले जाओ। अनाथों की तरह आश्रम में क्यों पड़े हो?”

“बेटी। गिरधरजी भी तो यहीं हैं। तुम सब हो ना। फिर वो अनाथ कैसे?”

“पापा, उनकी बात छोड़ो। आप घर चले जाओ।”

“नहीं, बेटा। पहले तुम गिरधरजी को घर लेकर जाओ। उनकी सेवा करने का वचन दो। तब मैं जाऊँगा।”

प्रियंका आश्रम नहीं जाती है। रतनलालजी भी घर नहीं जाते हैं। महेश घर लौट जाता है।

दो दिन बाद। राघव के स्कूल में एक अधिकारी
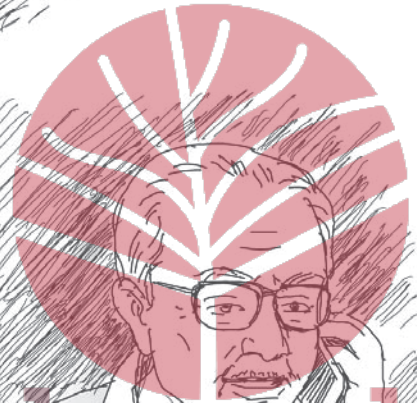
आते हैं। वे बच्चों को नैतिक शिक्षा की बातें बताते हैं। राघव उन बातों से प्रभावित होता है। घर आकर अपनी मम्मी को बताता है।

''मम्मी, मम्मी!''

''क्या है?''

''आज हमारे स्कूल में एक अधिकारी आए थे। उन्होंने बहुत अच्छी बातें बताईं।''

''क्या?''

उन्होंने कहा, ''हमेशा बड़ो की सेवा करनी चाहिए। उनका सम्मान करना चाहिए। सेवा ही धर्म है। सेवा का फल मीठा होता है। सेवा में ही मेवा है। है ना, मम्मी! अच्छी बातें।''

''बस, बस रहने दे।'' प्रियंका होंठ बिचकाते हुए बोली, ''तुम अपनी पढ़ाई करो। फालतू की बातों पर ध्यान मत दो।'' राघव पढ़ने लगता है।

उसी समय गोपी घर आता है। पत्नी को चुन्नीलाल जी की मृत्यु की सूचना देता है।

''पड़ोसी ने मुझे फोन किया। मैं गया। तब कुछ बोल रहे थे,

कह रहे थे, ''माँ-बाप की सेवा नहीं की। इसी का फल भोग रहा हूँ। आज मेरे बच्चे मेरे पास नहीं।

मौत के समय भी नहीं। बुढ़ापा बड़ा दुखदायी होता है।"

राघव उन दोनों की बातें सुन रहा था।

"फिर क्या हुआ?" प्रियंका ने पूछा।

बातें करते-करते चुप हो गए। प्राण निकल गए।

"अच्छा, मैं खाना बनाती हूँ।" वह रसोई में चली जाती है। उसके मन में प्रश्न दौड़ने लगते हैं—कल हम भी बूढ़े होंगे। राघव हमारी सेवा नहीं करेगा तो। हम भी बेमौत मरेंगे? नहीं, नहीं, वह सेवा करेगा। क्यों करेगा...वह।

हम भी तो बाऊजी की सेवा नहीं करते। तभी तो बाऊजी ने घर छोड़ दिया। तीनों भोजन करते हैं।

"सुनो, जी।"

"हाँ, बताओ।"

"हम बाऊजी को घर ले आएँ?

पता नहीं वे कैसे हैं। कितने दिन हो गए उन्हें घर से गए हुए।"

"हाँ, पापा। मम्मी ठीक कहती हैं। हम दादा जी को घर लाएँगे। कल ही।" राघव जिद करता है।

गोपी, प्रियंका, राघव अगले दिन वृद्धाश्रम जाते हैं। सुबह का समय। सभी वृद्धजन पार्क में घूम रहे थे। गिरधरजी और रतनजी भी। परिजन को देखकर

दोनों प्रसन्न होते हैं। राघव दौड़कर दादा-नाना के पास जाता है।

''दादाजी घर चलो। नानाजी आप भी देखो! मम्मी-पापा आपको लेने आए हैं।''

गोपी और उसकी पत्नी गिरधरजी से माफी माँगते हैं। लंबी चौड़ी बातें होती हैं। घर जाने का तय होता है। लाधूरामजी को बुलाते हैं। दीनू और लाधूरामजी आते हैं। दुआ-सलाम होती है।

गिरधरजी घर जाते हैं। रतनजी भी उनको छोड़ने साथ जाते हैं।

महेश को इसकी सूचना मिलती है। महेश एवं उसकी पत्नी गिरधरजी के घर पहुँचे। रतनजी अभी वहीं थे।

महेश ने रतनजी को घर चलने के लिए कहा। रतनजी अगले दिन उन्हें आश्रम में बुलाते हैं। अगले दिन महेश, उसकी पत्नी एवं बच्चे आश्रम में आते हैं। गोपी, प्रियंका एवं राघव भी। लाधूरामजी एवं छगनी पहले आ चुके थे।

''हमें आपकी हर शर्त स्वीकार है, पिताजी। अब आप हमारे साथ घर चलिए।'' महेश एवं उसकी पत्नी ने एक स्वर में कहा।
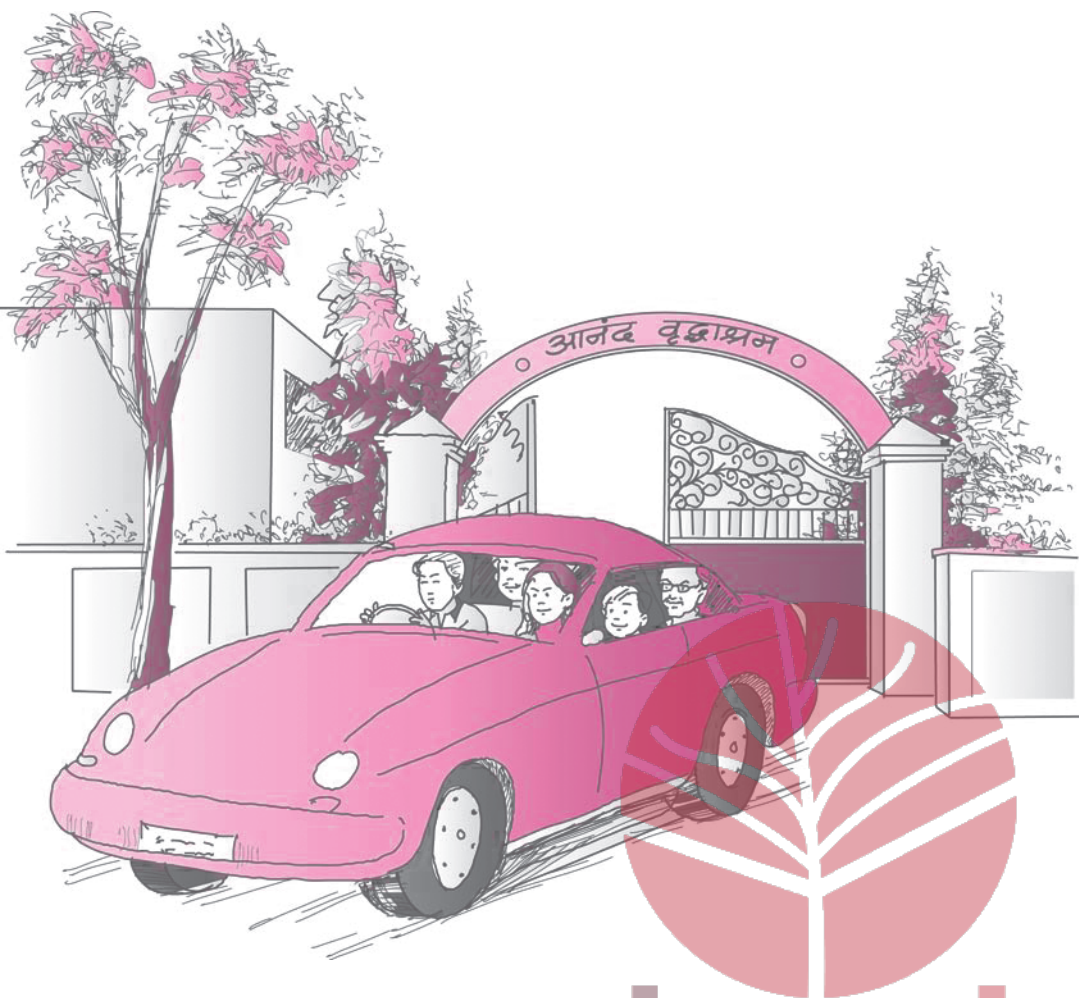
सभी तय करते हैं एक अभियान चलाने का। वृद्धजन सेवा अभियान। हर रविवार घर-घर जाकर सर्वे। वृद्धजन की पहचान। उनकी समस्याएँ जानना। घर वालों से संपर्क करना। सेवा के लिए उन्हें प्रेरणा देना।

मुद्रकः रॉयल ऑफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली

₹ 20.00
ISBN 812378805-3
9 788123 788050
19200827

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA